Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
January-June 2023 4(1), 4209–4213

COALITION POLITICS IN INDIA: FIRST EXPERIMENT

भारतीय राजनीति में गठबंधन: प्रथम प्रयोग

Dr. Srikant Pandey [1], Dr. Shubha Sinha [2]

[1] Associate Professor, Delhi College of Arts & Commerce University of Delhi, India
[2] Associate Professor, S P M College for Women University of Delhi, India

DOI
10.29121/shodhkosh.v4.i1.2023.4884

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2023 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

OPEN ACCESS

ABSTRACT

English: The socio-economic upheaval of the 1970s was used as a political opportunity by almost all non-congress political parties,irrespective of their ideological leanings to merge their political identities into one and challenge the political might of the Indian National Congress at centre. This new political avatar/ incarnation of the united opposition called Janata Party succeeded in dislodging the predominant Congress party from the seat of power at the national level / Raisina Hills. No doubt this experiment could not last long but it succeeded in creating a political awakening that predominant system can be challenged successfully. The researcher has tried to explain the reasons for the success and failure of this experiment in its first attempt at the National level.

Hindi: 1970 के दशक की सामाजिक-आर्थिक उथल-पुथल को विपक्षी दलों के नेताओं ने वैचारिक मतभेदों से परे राजनीतिक अवसर में बदल दिया। इस तरह के प्रयास ने परस्पर विरोधी राजनीतिक दलों को जनता पार्टी नामक एक राजनीतिक पहचान में बदल दिया, जिसने नई दिल्ली के रायसीना हिल्स में सत्ता के केंद्र से प्रमुख भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को सफलतापूर्वक हटा दिया। हालाँकि यह अपना पूरा कार्यकाल नहीं चला सका, लेकिन यह एक संदेश देने में सक्षम था कि एक पार्टी के प्रभुत्व को सफलतापूर्वक चुनौती दी जा सकती है। वर्तमान पत्र एक तरफ राजनीतिक सत्ता के एक साथ आने और राष्ट्रीय स्तर पर पहली गठबंधन सरकार के ढहने के कारणों का पता लगाने का इरादा रखता है।

Keywords: Emergency, MISA, Election, Predominance, Fractured mandate, Ideology, Coalition, आपातकाल, मीसा, चुनाव, प्रभुत्व, खंडित जनादेश, विचारधारा, गठबंधन

1. प्रस्तावना

1967 में दलीय व्यवस्था की उप-व्यवस्थाओं के भीतर देखी गई व्यवस्थागत उथल-पुथल धीरे-धीरे परिपक्व और रूपांतरित होती रही, जो अंततः 1977 में राष्ट्रीय स्तर पर उभरी। 1967 में राज्य स्तर पर देखी गई राजनीतिक पार्टियों के साथ आने की लगभग उसी राजनीतिक प्रक्रिया को दोहराते हुए, राष्ट्रीय राजनीतिक क्षेत्र के बड़े राजनीतिक पटल पर गठबंधन (तकनीकी रूप से यह राजनीतिक पार्टियों का एक पहचान में विलय था, जिसे जनता पार्टी कहा जाता था) की राजनीति का यह पहला प्रयोग वस्तुतः कांग्रेस प्रणाली में गहराते संकट के लिए एक खतरे की घंटी थी। हालाँकि, आपातकाल से पहले के कम दबाव वाले राजनीतिक चक्रवात से उत्पन्न राजनीतिक शून्यता ने आम तौर पर भारत भर में लोगों के आंदोलन और विशेष रूप से छात्र लामबंदी ने प्रमुख पार्टी प्रणाली के खिलाफ एक अनुकूल राजनीतिक तापमान पैदा किया, जिसे आपातकाल के बाद के चुनाव में एक बड़ा झटका लगा। वास्तव में, 1967 के चुनावी उभार ने न केवल राज्य स्तर पर पार्टी प्रणाली में गुणात्मक परिवर्तन लाया, बल्कि संघ स्तर पर भी इस गठबंधन के मॉडल का अनुकरण करने के लिए क्षेत्रीय राजनीतिक अभिजात वर्ग की बढ़ती चिंता को भी दर्शाया। आम तौर पर विपक्षी दलों और विशेष रूप से क्षेत्रीय दलों की बढ़ती ताकत ने 1977 में एक आदर्श राजनीतिक माहौल बनाया, जिसके कारण डेमोस के सामाजिक-आर्थिक असंतोष को दूसरे चुनावी उभार में बदल दिया गया, जिसके कारण प्रमुखता की जगह राजनीतिक दलों के चुनाव पूर्व/बाद के पुनर्गठन ने ले ली, जिसने केंद्र में पहली गठबंधन सरकार की स्थापना सुनिश्चित की। भारतीय पार्टी प्रणाली में इस दूरगामी परिवर्तन के लिए जिम्मेदार कारकों का कोई भी प्रासंगिक विश्लेषण स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करेगा कि निस्संदेह विपक्ष ने असंतुष्ट लोगों की सत्ता विरोधी भावना की आपातकाल के बाद की लहर पर सवार होने के लिए एकजुटता दिखाई, लेकिन

तथ्य यह है कि ऐसी ज्वालामुखीय राजनीतिक स्थिति देश की बिगड़ती राजनीतिक अर्थव्यवस्था के कारण बढ़ते जन असंतोष का परिणाम थी, जिसके कारण बड़े पैमाने पर औद्योगिक अशांति, रेलवे हड़ताल, छात्र आंदोलन और जय प्रकाश नारायण द्वारा 'संपूर्ण क्रांति' का आह्वान हुआ। 'यह भारतीय संघवाद की अनूठी सुंदरता को प्रदर्शित करता है जो महत्वपूर्ण मुद्दों के भीतर क्षेत्रीय आकांक्षाओं के समायोजनपूर्ण सामंजस्य के लिए जगह बनाने में देखा जाता है।पार्टियों की यह नीति स्पष्ट रूप से पार्टी प्रणाली के संघीयकरण गुणों को प्रतिबिंबित करती है। 1967 में राज्य स्तर पर कांग्रेस को मिली हार और उसके बाद 1977 में राष्ट्रीय स्तर पर भी यही परिणाम सामने आया, जिसका कारण लोकतांत्रिक सिद्धांतों की उपेक्षा और बढ़ते केंद्रीकरण को माना जाता है, जिसने न केवल इसके संघीय चरित्र को नष्ट किया, बल्कि भारत में गठबंधन की राजनीति के उदय के लिए भी यह महत्वपूर्ण साबित हुआ। (चक्रवर्ती विद्युत, फोर्जिंग पावर: कोलिशन पॉलिटिक्स इन इंडिया, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2006, पृष्ठ 95)। वास्तव में, 1975-77 के आपातकाल को भारत में गठबंधन की राजनीति के लिए एक 'निर्णायक क्षण' के रूप में देखा जाना चाहिए, क्योंकि इसने 'केंद्र में सत्ता पर कब्जा करने के लिए संघीय गठबंधन के निर्माण की अनुमति दी या बल्कि इसे उकसाया'। (बलवीर अरोड़ा, 'नेगोशिएटिंग डिफरेंसेस: फेडरल कोलिशन्स एंड नेशनल कोहेशन' इन फ्रांसिन आर फ्रैंकल एट अल ,संपादक)।

सैद्धांतिक रूप से, 1977 में केंद्रीय स्तर पर अल्पकालिक गठबंधन राजनीति की बौद्धिक परंपराओं को जेपी की 'संपूर्ण क्रांति' में देखा जा सकता है, जिन्होंने खुद क्रांतिकारी परिवर्तनों के राम मनोहर लोहिया के निम्नलिखित सात राजनीतिक आदेशों पर भरोसा किया: i) लिंग/पुरुष-महिला समानता; ii) रंग आधारित असमानता को दूर करना; iii) सामाजिक असमानता और जाति को हटाना और विशेष अवसरों का प्रावधान; iv) उपनिवेशवाद और विदेशी शासन का विरोध; v) अधिकतम आर्थिक समानता; vi) गोपनीयता और लोकतांत्रिक अधिकारों को सुनिश्चित करना; और vii) सामूहिक विनाश के हथियारों का विरोध। (लिमये, मधु, 1994, जनता पार्टी प्रयोग: विपक्षी राजनीति का एक अंदरूनी विवरण, 1977-80, नई दिल्ली, डीके प्रकाशक, खंड 2, पृष्ठ 542)। "जे.पी. ने इस सूत्रीकरण में विपक्षी गठबंधन की वैचारिक जड़ें पाईं। इसलिए, विपक्षी एकता के उद्देश्य को आगे बढ़ाने का उनका प्रयास 1967 के असफल लोहिया प्रयोग द्वारा किए गए वादे की पूर्ति थी।" (चक्रवर्ती विद्युत, भारत में गठबंधन की राजनीति, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2014)। संपूर्ण क्रांति के बीज तिहाड़ जेल के परिसर में एक नई राजनीतिक इकाई के रूप में आकार लेने लगे, जहां आपातकाल के दौरान अधिकांश विपक्षी नेता बंद थे। पहल श्री प्रकाश सिंह बादल ने की, जिन्होंने एक आम सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक एजेंडे द्वारा समर्थित एक आम पहचान में अपनी पहचान को डुबोकर विपक्षी दलों के एक साथ आने का विचार पेश किया। (दरबारा सिंह, भारतीय राजनीति, संदीप प्रकाशन, दिल्ली, 1978, पृष्ठ 98)। परिणामस्वरूप जनता पार्टी का गठन हुआ, जिसमें जनसंघ, कांग्रेस (ओ), सोशलिस्ट पार्टी, भारतीय लोकदल, कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी, जो पहले स्वतंत्र पार्टी का हिस्सा थी, तथा चंद्रशेखर, कृष्णकांत जैसे नेता शामिल थे, जिन्होंने आपातकाल की घोषणा का विरोध करते हुए कांग्रेस पार्टी छोड़ दी थी। (ए.एस. नारंग, भारतीय सरकार और राजनीति, गीतांजलि पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2000, पृष्ठ 362)।

घटक दलों के बीच इस बात पर सहमति बनी कि पार्टी जनता पार्टी के प्रतीक के तहत साझा उम्मीदवार उतारेगी। परिणामस्वरूप इसने अपने बैनर तले अकाली दल, भारतीय जनसंघ और वामपंथी दलों जैसे धुर विरोधी दलों के उम्मीदवारों को मैदान में उतारा। यह वैचारिक रूप से भिन्न दलों के बीच मजबूत कांग्रेस विरोधी संकल्प को दर्शाता है जिसने संबंधित नेताओं को आगामी चुनावी लड़ाई में एकजुट लड़ाई के लिए प्रेरित किया। इस एकता का श्रेय जे पी की भावुक व्यावहारिक अपील को दिया जाता है जिसने सत्ताधारी कांग्रेस पार्टी के खिलाफ एक संगठित राजनीतिक-चुनावी चुनौती को अंजाम देने का काम किया। वैचारिक मतभेदों को किनारे रखने के इस अनूठे प्रयोग को प्रोफेसर विद्युत चक्रवर्ती ने खूबसूरती से व्यक्त किया है, जिनका मानना है कि "कड़ी वर्गीय मतभेदों के बावजूद बंधन को मजबूत करने में जे पी की सफलता ने राजनीतिक एकता की संभावना का सुझाव दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि आपातकाल के बाद समाजवादियों ने अन्य घटकों के साथ अपने वैचारिक मतभेद को कम करने पर सहमति व्यक्त की। इसके अलावा, बीएलडी का वर्ग चरित्र कभी भी एक गठबंधन बनाने के रास्ते में नहीं आया, जिसमें पूरी तरह से विपरीत बीजेएस एक महत्वपूर्ण भागीदार था। (बिद्युत चक्रवर्ती, फोर्जिंग पावर: कोएलिशन पॉलिटिक्स इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2006, पृ105; इस तर्क के विवरण के लिए देखें टी वी सत्यमूर्ति, स्टेट एंड सोसाइटी इन ए चेंजिंग पॉलिटिकल पर्सपेक्टिव भारतीय राजनीति में अपने कट्टर प्रतिद्वंद्वी के साथ हाथ मिलाने का आरएसएस समर्थित भारतीय जनसंघ का फैसला था। इसकी वैचारिक स्थिति में यह प्रत्यक्ष परिवर्तन बाला साहब देवरस के व्यावहारिक अहसास पर आधारित था, जिसके अनुसार, 'राष्ट्रीय राजनीति की मुख्यधारा में बने रहने के लिए, आरएसएस को अपनी पृथकतावादी वैचारिक पहचान को पुनर्परिभाषित करके समायोजन की राजनीति का विकल्प चुनना चाहिए।' (प्रलय कानूनगो, आरएसएस की राजनीति से मुलाकात: हेडगेवार से सुदर्शन तक, नई दिल्ली,: मनोहर, 2002, पृ. 100-110.) वास्तव में, यह प्रलयकारी राजनीतिक परिवर्तन आपातकाल के दौरान लोकतंत्र के तानाशाही पतन से प्रेरित था, जिसने विपक्षी दलों को यह विश्वास दिला दिया था कि जब तक वे अपनी राजनीतिक यात्रा के इस महत्वपूर्ण क्षण में लोगों के लिए एकजुट चुनावी विकल्प नहीं बनाते, तब तक उनका अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा। इसलिए, जनता पार्टी अस्तित्व में आई 'मुख्य रूप से इसलिए क्योंकि आपातकाल के अनुभव ने उन्हें आश्वस्त किया कि उनका अस्तित्व खतरे में है और मार्च 1977 में छठी लोकसभा के चुनाव उनके लिए भारतीय राजनीति पर कांग्रेस पार्टी के वर्चस्व को चुनौती देने का आखिरी मौका हो सकते हैं' (द स्टेट्समैन, कलकत्ता, जनवरी, 1977)।

नई राजनीतिक पहचान/ स्वरूप , निस्संदेह, वैचारिक रूप से असंगत दलों का एक समूह था, लेकिन एक साथ आना एक औपचारिक साझा न्यूनतम कार्यक्रम पर आधारित था, जो वैचारिक मतभेदों को कम करने को दर्शाता था। चुनावी वादों के इस दस्तावेज़ में सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक आवश्यकताओं की उनकी समझ झलकती थी, जो नागरिक समाज के लगभग सभी समकालीन मुद्दों को संबोधित करने वाली थी। इन कार्यक्रम संबंधी वादों की व्यापक रूपरेखा जनता पार्टी के घोषणापत्र में प्रतिबिंबित होती है, जिसमें इसकी प्रतिबद्धता की घोषणा की गई है: बाह्य आपातकाल (1971 के भारत-पाक युद्ध के बाद से जारी बाह्य आपातकाल) और 1975 में लगाए गए आंतरिक आपातकाल को निरस्त/वापस लेना;

मीसा जैसे क्रूर अधिनियमों को निरस्त/अमान्य करना; उन कानूनों को रद्द करना जो प्रेस की स्वतंत्रता सहित बुनियादी मानव/मौलिक अधिकारों को छीनते हैं; कुख्यात 42वें संशोधन अधिनियम को खत्म करना और पिछली सरकार का विरोध करने के लिए सलाखों के पीछे डाले गए राजनीतिक कैदियों की रिहाई सुनिश्चित करना। इस तरह के एक इच्छित प्रयास का मूल उद्देश्य उन स्वतंत्रताओं की बहाली का आश्वासन देना था, जिन्हें पिछली सरकार ने अलोकतांत्रिक तरीके से छीन लिया था। समाज के आर्थिक पुनर्गठन के क्षेत्र में घोषणापत्र में प्रतिज्ञा की गई: मौलिक अधिकारों की न्यायोचित सूची से भेदभावपूर्ण निजी संपत्ति के अधिकार को खत्म करना; काम के अधिकार पर जोर देना और पंद्रह वर्षों में बेरोजगारी को हटाने की गारंटी देना। सामाजिक पुनर्गठन के क्षेत्र में घोषणापत्र का फोकस शिक्षा में सुधार और निरक्षरता को दूर करने पर था। (एक विस्तृत विचार-विमर्श ग्रैनविले ऑस्टिन में पाया जा सकता है, वर्किंग औफ ए डेमोक्रेटिक डेमोक्रेटिक कॉन्स्टिट्यूशन, ओयूपी, नई दिल्ली, 2000, पृ. 398-400.) वास्तव में घोषणापत्र में किए गए वादे के अनुसार जनता पार्टी के भावी कार्यक्रमों की सावधानीपूर्वक जांच से पता चलता है कि लगभग सभी घटकों की वैचारिक प्रतिबद्धताओं को समायोजित करने के लिए एक गंभीर प्रयास किया गया था। इनमें प्रमुख थे: स्वतंत्र पार्टी का नियोजन विरोधी मुद्दा; भारतीय जनसंघ की स्वदेशी/राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता की वैचारिक प्रतिबद्धता; समाजवादी समूहों की कई पसंदीदा वैचारिक प्रतिबद्धताएँ आदि। आर्थिक दृष्टि दस्तावेज़ में यह प्रभावशाली ग्रामीण कुलीनों और पूंजीपति वर्ग के हितों को संतुलित करने पर निर्भर था। कुल मिलाकर इस तरह के विरोधाभासी पैचवर्क में गंभीर खामियाँ थीं। (क्रिस्टोफ़ेल लेइटन, जनता एज़ ए कंटिन्यूटी ऑफ़ द सिस्टम, सोशल साइंटिस्ट, जनवरी, 1991 जैसा कि ए एस नारंग में उद्धृत किया गया है: op.cit, पृ. 363)। कांग्रेस शासन के खिलाफ समावेशी राजनीतिक-चुनावी युद्धघोष की यह नव-राजनीतिक पहल पूरे देश में जोर पकड़ने लगी क्योंकि आम जनता आपातकाल के खिलाफ उनके अभियान से सहमत थी जिसके कारण मौलिक अधिकारों और नागरिक स्वतंत्रताओं का निलंबन, लोगों की अंधाधुंध और मनमानी हिरासत, जनसंचार माध्यमों पर सेंसरशिप, जबरन नसबंदी सहित अनिवार्य परिवार नियोजन और अन्य कठोर उपाय किए गए। (अर्शी खान, 1967 से भारत में गठबंधन की राजनीति, अख्तर मजीद (संपादक): गठबंधन और सत्ता की साझेदारी, मानक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृष्ठ 155)

जनता की आवाज कांग्रेस के निर्बाध शासन से अधिक शक्तिशाली साबित हुई, क्योंकि आपातकाल के बाद हुए छठे लोकसभा चुनाव के फैसले ने उसके पिछले चुनावी भाग्य को राख में मिला दिया। 539 सीटों वाली नवगठित लोकसभा में जनता पार्टी ने 270 सीटें हासिल कीं। इसके अन्य घटक दलों कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी को 28 सीटें मिलीं, अकाली दल ने 8 सीटें जीतीं और सीपीआई (एम) 28 सीटों पर विजयी हुई। कांग्रेस पंजाब, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, यू.पी. और राजस्थान में अपना चुनावी खाता भी नहीं खोल सकी। यद्यपि श्रीमती गांधी को आंध्र प्रदेश से लोकसभा में एक सीट पर कब्जा करने का सौभाग्य मिला, लेकिन उन्होंने यू.पी. से अपनी पारंपरिक जीतने वाली सीट खो दी। हालांकि दक्षिणी क्षेत्र ने कांग्रेस को साफ नहीं किया। कुल मिलाकर, ज्यादातर लंबे समय से सेवारत कांग्रेस नेताओं को अपमानजनक हार का सामना करना पड़ा, जबकि जनता पार्टी और उसके समर्थक घटकों के अधिकांश प्रमुख नेता विजयी हुए। राज्य तंत्र के दुरुपयोग पर आधारित तानाशाही शासन का प्रतिरोध करने और उसे बदलने की गांधीवादी पद्धति में अपनी आस्था को दर्शाते हुए जनता पार्टी और अकाली पार्टी के नव निर्वाचित सांसदों ने 22 मार्च, 1977 को जेपी और जेबी कृपलानी की उपस्थिति में राजघाट का दौरा किया और शपथ ली कि वे: नागरिक और राजनीतिक अधिकारों को बनाए रखेंगे; राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देंगे और व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में मितव्ययिता और ईमानदारी को बढ़ावा देंगे। (टीओआई, नई दिल्ली, 23 मार्च, 1977)। इसके बाद, ये निर्वाचित सांसद गांधी शांति प्रतिष्ठान में एकत्र हुए, जहाँ जेपी और कृपलानी ने मोरारजी देसाई को सर्वसम्मति से जनता पार्टी के नेता के रूप में स्वीकार करवाने में सफलता प्राप्त की, जिन्होंने अंततः 24 मार्च, 1977 को प्रधानमंत्री का पद संभाला। (ibid, 23 और 24 मार्च, 1977)। जेपी और कृपलानी, दोनों ही पार्टियों के इस एक साथ आने के मुख्य वास्तुकार थे, उन्होंने न केवल 1 मई, 1977 को जनता पार्टी के अधिवेशन में भाग लिया, बल्कि बीएलडी, कांग्रेस (ओ), सोशलिस्ट और जनसंघ के औपचारिक विलय द्वारा पार्टी की मजबूती सुनिश्चित की। (टीओआई, 2 मई, 1977)।इसके बाद 5 मई 1977 को कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी की स्थापना हुई (ibid, 6 मई 1977)। जनता पार्टी ने अपनी कार्यकारी पारी की शुरुआत नौ कांग्रेस शासित राज्य विधानसभाओं को भंग करके और पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, ओडिशा और पश्चिम बंगाल में नए चुनाव कराकर की थी (टीओआई, नई दिल्ली, 5 अप्रैल 1977)। इन विधानसभाओं के चुनाव जून 1977 में तमिलनाडु और जम्मू और कश्मीर के साथ हुए थे। तमिलनाडु और जम्मू और कश्मीर को छोड़कर जनता पार्टी या तो अपने दम पर या अपने सहयोगी गठबंधन सहयोगियों के समर्थन से सत्ता में आई। इस प्रकार जनता पार्टी की चुनावी जीत पूरे भारत में हुई क्योंकि वह न केवल केंद्र में बल्कि संघ के कई राज्यों में भी सत्ता हासिल कर सकी।

हालांकि यह भारी जीत न केवल आपातकाल के दौरान कांग्रेस शासन द्वारा गलत कामों को पूरी तरह से खारिज करने का प्रतिबिंब थी बल्कि जनता पार्टी और उसके सहयोगियों द्वारा किए गए असाधारण सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक सुधारात्मक उपायों के वादे का भी परिणाम थी। अपेक्षित बदलाव के लिए नई व्यवस्था द्वारा चमत्कार की आवश्यकता थी, जिस पर भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के आलोचकों को संदेह था। वास्तव में, वे इस राजनीतिक रूप से सुविधाजनक प्रयोग के अस्तित्व पर संदेह कर रहे थे क्योंकि पार्टियों के वैचारिक रूप से दूर होने से इस नई राजनीतिक इकाई की स्वाभाविक मृत्यु हो सकती थी, जो अघुलनशील अंतर्निहित विरोधाभासों से बोझिल थी। "जनता पार्टी गठबंधन की जीत पर उत्साह अल्पकालिक था। एक बार सरकार बन जाने के बाद, पार्टी को एकजुट रखना नेताओं का मुख्य काम था। केंद्र और राज्यों दोनों में पार्टी में लगातार कलह और अंदरूनी कलह से सरकार को बार-बार झटके मिले।" (बिद्युत चक्रवर्ती, फोर्जिंग पावर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 107)। यह सरकार में चल रहे आंतरिक असंतोष से स्पष्ट था क्योंकि जगजीवन राम और चरण सिंह जैसे दो वरिष्ठ कैबिनेट सहयोगियों को शीर्ष पद के लिए अपनी आकांक्षाओं को छिपाना मुश्किल हो रहा था, जो मोरारजी देसाई के पास था। इसके अलावा, जैसा कि सीपी भांबरी ने सुझाया है, जनता पार्टी में वैचारिक एवं अन्य विविधताओं के कारण परस्पर सामंजस्य कम होती गई । ऐसा संभवतः इसलिए हुआ क्योंकि जनता दल के ज़्यादातर घटक

मुख्य रूप से उत्तरी राज्यों में अच्छी तरह से स्थापित थे, लेकिन वे सभी एक-दूसरे के राजनीतिक क्षेत्र में सेंध लगाने का इरादा रखते थे। इसके अलावा, राजनीतिक दलों के नए राजनीतिक इकाई में विलय ने उनके ट्रेड यूनियनों, युवा विंग, किसान संगठनों और अन्य फ्रंटल संगठनों द्वारा स्वचालित रूप से एकीकृत कार्य नहीं किया, क्योंकि ये न केवल जनता पार्टी के राजनीतिक छत्र के बाहर बने रहे, बल्कि विपरीत उद्देश्यों के लिए काम करते रहे, जिससे पार्टी में दरारें पड़ना तय था। (सी पी भांबरी, जनता पार्टी- एक प्रोफ़ाइल, राष्ट्रीय, दिल्ली, 1983, पृष्ठ 15)। इस प्रकार, जनता पार्टी जिसने कांग्रेस के एक व्यवहार्य राजनीतिक विकल्प की उम्मीद जगाई, आलोचकों को गलत साबित नहीं कर सकी क्योंकि यह अनिवार्य रूप से न केवल विभिन्न दलों और समूहों का गठबंधन बनी रही, बल्कि इसके नेताओं की परस्पर गुटबाजी, हेरफेर और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं का शिकार बनी रही। (बिपन चंद्र, स्वतंत्रता के बाद भारत, पृष्ठ 264; विद्युत चक्रवर्ती द्वारा फोर्जिंग पावर में उद्धृत, पृष्ठ 107-08)। सतही एकता जल्द ही प्रमुख घटकों के बीच गरमागरम वाद-विवाद के कारण लुप्त होने लगी, क्योंकि उन्होंने अपने विशेष दलीय हितों को अधिकतम करने की कोशिश की।

दुर्भाग्य से, भारतीय जनसंघ की दोहरी सदस्यता के मुद्दे पर आंतरिक कलह ने द्विध्रुवीय रूप लेना शुरू कर दिया। जबकि जनता पार्टी के गैर-भारतीय जनसंघ घटक संघ के साथ अपने संबंधों को खत्म करने पर जोर देते रहे, लेकिन उन्होंने ऐसा करने से इनकार कर दिया, जिससे अंतर्निहित विरोधाभासों में वृद्धि हुई। विघटन का आसन्न खतरा उत्तर प्रदेश में जनसंघ के दो मंत्रियों को मुख्यमंत्री राम नरेश यादव द्वारा पद से हटाए जाने के साथ शुरू हुआ, क्योंकि उन्होंने भारत में बहु-धार्मिक समुदायों के बीच सद्भाव के हित में सांप्रदायिक गतिविधियों को त्यागने के जनता के चुनावी वादे का कथित रूप से उल्लंघन किया था। (टीओआई, 29 फरवरी, 1979, बिद्युत चक्रवर्ती, फोर्जिंग पावर, ओयूपी, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ 108 में उद्धृत)। भारतीय जनसंघ के दिग्गजों ने इसे अपनी राजनीतिक विचारधारा को बदनाम करने और हाशिए पर डालने के लिए एक जानबूझकर किया गया प्रयास माना, जो कि घटकों की मूलभूत 'सार्वभौमिकता' के विरुद्ध था। (29 फरवरी 1979 को लखनऊ में लालकृष्ण आडवाणी का प्रेस वक्तव्य, द इंडियन एक्सप्रेस, 30 फरवरी 1979, जैसा कि बिद्युत चक्रवर्ती, फोर्जिंग पावर, पृष्ठ 108 में उद्धृत किया गया है)। इससे पहले कि यह मुद्दा सुलझ पाता, जनता पार्टी में एक और राजनीतिक संकट आ गया, जब जून 1979 में चरण सिंह ने गृह मंत्री के पद से इस्तीफा दे दिया। हालांकि चरण सिंह को वित्त मंत्री के रूप में वापस शामिल होने के लिए राजी किया गया था। हालांकि, वह जनसंघ की दोहरी सदस्यता के मुद्दे को उठाने के लिए समाजवादियों के साथ गठबंधन करने में सफल रहे, जिसके कारण अंततः पार्टी और सरकार में टूट हुई। दूसरी ओर राज नारायण ने भी मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया और जनता (धर्मनिरपेक्ष) नामक एक नया राजनीतिक संगठन बनाया क्योंकि वह 'सांप्रदायिक जन संघ' को शामिल करने वाले मंत्रिमंडल का हिस्सा नहीं बनना चाहते थे। (द हिंदुस्तान टाइम्स, 13 जून, 1979)। अंतिम झटका विपक्ष द्वारा प्रधानमंत्री पर अप्रत्यक्ष हमले के रूप में आया, जिसमें उनके बेटे कांति देसाई पर भ्रष्ट आचरण के आरोप लगाए गए। कांग्रेस पार्टी ने जुलाई में वाई वी चौहान के माध्यम से अविश्वास प्रस्ताव लाने में काफी तेजी दिखाई, क्योंकि उसकी राजनीतिक छठी इंद्री ने संकेत दिया था कि चल रहे व्यक्तिगत अंतर-पार्टी/गुटीय झगड़े ने जनता सरकार को इतना कमजोर कर दिया है कि हल्का धक्का भी इसे गिरा सकता है। और यह उसी तरह हुआ जैसे कई मंत्रियों के इस्तीफे और बीएलडी और समाजवादियों द्वारा पार्टी छोड़ने के फैसले ने सरकार के लिए ऐसी शर्मनाक स्थिति पैदा कर दी कि यह न केवल अल्पमत की सरकार बन गई, बल्कि मोरारजी देसाई को भी अविश्वास प्रस्ताव का सामना किए बिना 15 जुलाई 1979 को इस्तीफा देने के लिए मजबूर होना पड़ा। इससे केंद्र में गठबंधन सरकार बनाने का पहला बड़ा प्रयास समाप्त हो गया।

वैचारिक मतभेदों के बावजूद राजनीतिक दलों के सह-अस्तित्व के प्रयास के उपरोक्त विश्लेषणात्मक विवरण ने राजनीतिक वैज्ञानिकों के बीच यह उम्मीद जगाई कि चुनावी लोकतंत्र का राजनीतिक मंथन संभावित द्विदलीय व्यवस्था के चरण में प्रवेश करने के लिए कमर कस रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि कांग्रेस विरोधी ताकतों ने 1967 में राज्यों में क्षेत्रीय दलों की सफलता से संकेत लिया होगा। हालांकि व्यक्तित्वों के टकराव के कारण यह राजनीतिक/चुनावी तख्तापलट का प्रयास लंबे समय तक नहीं चल सका, लेकिन इसने निकट भविष्य में प्रमुख दलीय व्यवस्था के लिए आसन्न खतरे की संभावना को अवश्य दर्शाया। इस प्रयोग का एक और महत्वपूर्ण विकास यह था कि आरएसएस के प्रभुत्व वाले जनसंघ या भाजपा ने यदि आवश्यक हो तो मध्यमार्गी लाइन पर चलने की इच्छा जताई। लेकिन जनता पार्टी के बाद के प्रयोग ने समाजवादी आंदोलन के क्षरण और विखंडन को भी देखा क्योंकि उसके बाद उसी वैचारिक वंश से कई राज्य केंद्रित राजनीतिक दलों का जन्म हुआ। ये घटनाक्रम पार्टी प्रणाली के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण साबित हुए क्योंकि इसने प्रमुख प्रणाली को कमजोर करने की नींव रखी और अधिक प्रतिस्पर्धी पार्टी प्रणाली की संभावनाओं को बढ़ाया। योगेंद्र यादव ने इस विकास को लोकतंत्र की गहराई के चश्मे से देखने की कोशिश की है, जिसने पहली लोकतांत्रिक उथल-पुथल पैदा करने में सफलता पाई, जिसके तहत राज्य स्तर पर चुनावी लड़ाई में प्रमुख/कांग्रेस प्रणाली को बड़ा झटका लगा। हालांकि इसने राज्य स्तर पर पार्टी प्रणाली की बढ़ती प्रतिस्पर्धी प्रकृति का संकेत दिया, लेकिन कांग्रेस प्रणाली को लगभग एक दशक तक राष्ट्रीय स्तर पर किसी भी चुनौती का सामना नहीं करना पड़ा। हालांकि वे यह तर्क देने से पीछे नहीं हटते कि इस लोकतांत्रिक उथल-पुथल ने आने वाले वर्षों में कांग्रेस के घटते लाभ के लिए जमीन तैयार की है, जो 1977 में कांग्रेस की आपातकाल के बाद की चुनावी पराजय के दौरान परिलक्षित हुई थी। दूसरे शब्दों में वे राष्ट्रीय स्तर पर पार्टी प्रतिस्पर्धा में मौजूदा एक पार्टी प्रमुख प्रणाली में आसन्न परिवर्तन की कल्पना कर सकते हैं। (योगेंद्र यादव, परिवर्तन के समय में चुनावी राजनीति: भारत की तीसरी चुनावी प्रणाली, 1989-99, आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 21-28 अगस्त, 1999, पृष्ठ 2394)।

संदर्भ

श्रीकांत पांडे, 2021, गठबंधन युग में भारतीय पार्टी प्रणाली (1999-2014), दिल्ली विश्वविद्यालय।
ए एस नारंग, भारतीय सरकार और राजनीति, गीतांजलि पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2000।
चक्रवर्ती विद्युत, फोर्जिंग पावर: भारत में गठबंधन की राजनीति, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2006।
चक्रवर्ती बिद्युत, भारत में गठबंधन की राजनीति, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2014।
दरबारा सिंह, भारतीय राजनीति, संदीप प्रकाशन, दिल्ली, 1978
बलवीर अरोड़ा, 'बातचीत मतभेद: संघीय गठबंधन और राष्ट्रीय सामंजस्य' फ्रांसिन आर फ्रैंकल एट अल (संपादकों), ट्रांसफॉर्मिंग इंडिया: सोशल एंड पॉलिटिकल डायनेमिक्स ऑफ डेमोक्रेसी, नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2002 में।
लिमये, मधु, 1994, जनता पार्टी प्रयोग: विपक्षी राजनीति का एक अंदरूनी सूत्र का लेखा-जोखा, 1977-80, नई दिल्ली, डीके पब्लिशर्स, खंड 2।
टी वी सत्यमूर्ति, बदलते राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में राज्य और समाज, टी वी सत्यमूर्ति (संपादक), उपनिवेशवादोत्तर भारत में वर्ग निर्माण और राजनीतिक परिवर्तन, खंड 4, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1996. (प्रलय कानूनगो, आरएसएस का राजनीति से नाता: हेडगेवार से सुदर्शन तक, नई दिल्ली: मनोहर, 2002.
ग्रैनविले ऑस्टिन, वर्किंग ऑफ ए डेमोक्रेटिक कॉन्स्टिट्यूशन, ओयूपी, नई दिल्ली, 2000.
अर्शी खान, 1967 से भारत में गठबंधन की राजनीति, अख्तर मजीद (संपादक): गठबंधन और सत्ता का बंटवारा, मानक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000.
सी पी भांबरी, जनता पार्टी- एक प्रोफ़ाइल, राष्ट्रीय, दिल्ली, 1983.
(योगेंद्र यादव, परिवर्तन के समय में चुनावी राजनीति: भारत की तीसरी चुनावी प्रणाली, 1989-99, आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 21-28 अगस्त, 1999.
द टाइम्स ऑफ इंडिया, नई दिल्ली
द हिंदुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली
द स्टेट्समैन, कलकत्ता